राष्ट्रीय सहारा
www.samaylive.com
सच कहने की हिम्मत
राष्ट्रीयता • कर्त्तव्य • समर्पण

sunday उमंग
राष्ट्रीय सहारा
रविवार 9 जून • 2013

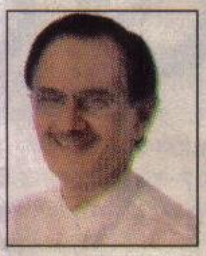

अध्यात्म

■ डॉ. एन. के. शर्मा

क्यों फलदायी नहीं होते हमारे कर्म

बहुत सारे लोग यह सोचकर भ्रमित रहते हैं कि जो सत्कार्य वे करते हैं, उनका उन्हें कोई लाभ नहीं मिलता, पुण्य नहीं मिलता। दरअसल, निजी स्वार्थ के लिए किया गया कोई भी कार्य फलदायी नहीं होता। उदाहरण के लिए, कुछ लोग यह सोचकर दान देते हैं कि पैसे फालतू पड़े हैं, काला धन है, इनकम टैक्स के झंझटों में कौन फंसे, इससे तो अच्छा भगवान को चढ़ा दें। पुण्य ही मिलेगा, भगवान खुश हो जाएंगे। अब इस दान में आपका भाव एक बोझ से छुटकारा पाना है, झंझट से बचना है। इसमें लालच और चापलूसी का भी भाव है। ऐसे में आपके मूल आंतरिक भाव के अनुसार, आपको नकारात्मक फल ही मिलेगा, पुण्य नहीं। पुण्य मिलता है, प्रेम और करुणा में, सहयोग, मैत्री, सर्व-कल्याण जैसे सच्चे सात्विक भावों से। पर ऐसे दान बहुत कम देखने में आते हैं। दान में इस बात का जरा भी महत्व नहीं है कि दान कितना महंगा है बल्कि दान में यह महत्वपूर्ण है कि दान कितना सद्भाव, करुणा, प्रेम और परोपकार से दिया गया है। ऐसे सद्भाव से दिया गया 10 रुपया भी उतना ही पुण्य देगा जितना 10 करोड़ का दान क्योंकि दोनों अवस्थाओं में आंतरिक भाव सात्विक थे और उतने ही गहरे थे। फल। 10 रुपये या 10 करोड़ रुपये के अनुसार नहीं मिलेगा

क्यों फलदायी नहीं ...

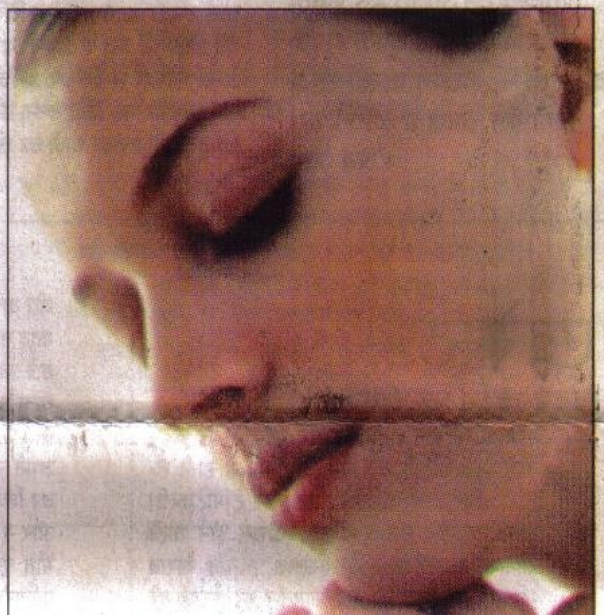

उस सकारात्मक ऊर्जा को उस तीर्थ स्थान पर जाकर कोई भी थोड़ी संवेदनशीलता से सहज ही महसूस कर सकता है। ऐसे तीर्थ क्षेत्र में जाते ही आप, अपने भीतर एक ऊर्जा, शांति, आनंद, एक मानसिक या भावनात्मक परिवर्तन महसूस कर सकते हैं। तीर्थ यात्रा अर्थात सामान्य तनावपूर्ण, स्वार्थ एवं वासनाओं से भरे जीवन वाले एक किनारे के विपरीत दूसरी ओर, एक ऐसा किनारा भी है जहां प्रेम, आनंद, शान्ति, करुणा, मैत्री, परोपकार जीवन की सर्वोच्च अवस्था में खिलने जैसा स्वर्ग भी है। तीर्थ यात्रा एक झटका है, उत्तेजना है, जाग जाने का संदेश है, एक एवरेस्ट की सूचना है परंतु 99 फीसद लोग तीर्थ यात्रा से लौटकर थोड़ी देर के लिए श्मशान घाट का वैराग लाकर, फिर उसी बेहोशी वाले जीवन में लौट आते हैं जैसे कोई गर्मी के अंदर ठंडे पानी के छींटे मार आया, परंतु कुछ देर बाद फिर पसीने में लथपथ हो रहा है। तीर्थ यात्रा का अर्थ है, ऐसी गंगा में जाना जहां सदियों से संस्कार के रूप में पाले हुए अपने अहंकार, वासनाएं, अनावश्यक महत्वाकांक्षाएं, स्वार्थ, विकार सब छोड़कर, साफ़कर, उससे मुक्त होकर, जागकर, रूपान्तरित होकर, फिर इस संसार में आना और कीचड़ होते हुए भी कमल के फूल की तरह खिलना और अपनी सुंदरता और पवित्रता का लाभ संसार को देना।

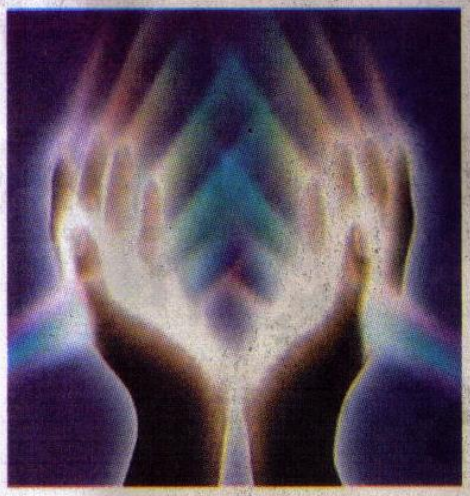

तीर्थ यात्रा कर जागे ही नहीं, रूपान्तरित ही नहीं हुए तो करते रहें, ऐसी हजारों तीर्थ यात्राएं और देते रहें दिल को झूठी तसल्ली, जीते रहें भ्रम में। संसार में किसी को कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। अब तो होश में आ ही जाओ और कर लो सच्ची तीर्थ यात्रा, कहीं दूर जाकर नहीं अपने भीतर जाकर। बाहर की सभी तीर्थ यात्राएं, भीतर की तीर्थयात्रा से बचने के उपाय हैं। अपने से और दूर जाने के तरीके हैं। इसलिए सदियों से मानव इतनी तीर्थयात्राएं करने के बावजूद वहीं का वहीं है। उसे सिर्फ यही मानसिक संतोष है कि उसने भले ही कितने ही पापकर्म किये हों, भगवान के दरबार में हाजिरी लगा कर या थोड़ा-बहुत दान देकर या मंदिर -गुरुद्वारे में सेवा कर उसने ईश्वर को सूचित कर दिया है। अब ईश्वर इतना तो करेगा ही कि नरक से बचा लेगा। आदमी भीतर की तीर्थयात्रा से बचकर बाहर की तीर्थ यात्राओं को इतना महत्व देता है। ऐसा नहीं है कि बाहर की तीर्थ यात्राएं गैरजरूरी है या महत्वपूर्ण नहीं है। बाहर की तीर्थयात्राएं आध्यात्मिक जगत में प्रवेश करने की पहली सीढ़ी है, एक प्रेरणा है, एक उत्तेजना है। अंतिम मंजिल या उद्देश्य तो भीतर की गंगा में डूबना है, उस पार जाना है, स्वयं को तीर्थ-स्थल बनाना है, तीर्थ यात्रा करना नहीं है। स्वयं तीर्थ स्थल में रूपांतरित हो जाना है।

हमारे ही डर, हमारे ही विश्वास।
करते हैं निराश या बंधाते हैं आस।।

और ईश्वर के दरबार में आंतरिक भाव काम करते हैं बाहर से, ऊपर-ऊपर से किये गये काम या व्यवहार नहीं। अगर आप दान अहंकार-वश देते हैं कि चार लोगों में, समाज में, मेरी प्रतिष्ठा बढ़ेगी, लोग मुझे महादानी, महात्यागी, महाधार्मिक समझेंगे, वाह-वाह होगी, सम्मान मिलेगा, विशेष पद मिलेगा, तो आपका मूलभाव अहंकार एवं लालच है। तब, आपको दुनिया की कोई शक्ति, कोई नियम, पुण्य नहीं दे सकता। आपके भाव के अनुसार आपको क्षणिक आनंद या तृप्ति तो मिल सकती है, लेकिन भविष्य में इसका परिणाम दुःखद ही होगा क्योंकि बीज गलत है।

अब यदि, आप दान इस भाव से दे रहे हैं कि जा ले जा! तू तो निकृष्ट है, मैं उत्कृष्ट हूं तो इस दान में भी अहंकार का ही पुट है और नकारात्मक फल ही मिलेगा। इसलिए भारत में इस भाव से बचने के लिए 'दक्षिणा' शब्द का उपयोग किया गया कि आप कृतज्ञ हो रहे हैं कि सामने वाला आपका दान सहर्ष स्वीकार कर रहा है।

अगर आप दान देकर हिसाब-किताब रखते हैं या कोई अपेक्षा रखते हैं तो याद रखें आपका भाव दानमयी नहीं बल्कि एक भिखारीपन है, एक मांग है, एक लालच है, एक आकांक्षा है। तब फल भी आपको, इन भीतरी भावों के अनुसार ही मिलेगा। इसका अंतिम परिणाम दुःख के रूप में मिलता है, जो आपकी अपेक्षा की कसौटी पर खरा नहीं उतरता।

■ (लेखक दिल्ली स्थित रेकी हीलिंग फाउंडेशन के संस्थापक हैं)

बल्कि फल भीतर के मूल आंतरिक भावों के अनुसार मिलेगा। हमारा अचेतन मन ऐसे ही काम करता है। वह हमेशा मूलभूत सच्चाई का साथ देता है। ये तो हमारा अहंकारी दिमाग हिसाब करता है कि 10 करोड़ दिए हैं तो ऊपर भगवान, आगे की सीट (वी.आई.पी.) तो दे ही देगा, थोड़ा खास ख्याल तो करेगा ही। अवचेतन मन में चापलूसी का भाव प्रबल है, बहती गंगा में हाथ धोने वाला भाव है। ऐसे भावों से कौन पुण्य देगा? हां! आप यदि अपने बलबूते पर, कृतज्ञता का भाव प्रकट करने तीर्थयात्रा पर जाते हैं तो आपके सद्भाव के कारण पुण्य मिलने की ज्यादा संभावना रहती है।

नकारात्मक भावों से कभी पुण्य का लाभ नहीं मिलता क्योंकि अवचेतन मन आपके आंतरिक भावों के अनुसार ही फल देता है। तीर्थ का अर्थ है दूसरे छोर (तीर) पर जाने की कला, उसकी यात्रा जो 99 फीसद किसी का भी वास्तविक उद्देश्य नहीं है। तीर्थ क्षेत्र यानी ऐसी पवित्र, ऊर्जावान जगह जहां किसी ने बैठकर साधनाएं की, एक सकारात्मक ऊर्जा का निर्माण किया, जहां रज-रज में सकारात्मक ऊर्जाओं का भंडार है, जहां एक दिव्य पुरुष या आत्मा का निवास रहा है, उस सकारात्मक ऊर्जा को उस तीर्थ स्थान पर जाकर कोई भी थोड़ी संवेदनशीलता से सहज ही महसूस कर सकता है

उदाहरण तीर्थयात्राओं में अधिकतर आपके आंतरिक भाव स्वार्थ, आपकी मनोकामनाएं, कष्ट निवारण हेतु ईश्वर का नाम जो चाहे हो, धर्म कोई भी हो, आपका मतलब सिद्ध होना चाहिए, (लालच) स्वार्थ, मोक्ष और अधिक सुख-शांति हेतु, (चापलूसी) कि ईश्वर बड़ा अहंकारी है, प्रशंसा, गुणगान से बड़ा खुश होता है, आपका वह विशेष ख्याल रखेगा। ऊपर जाने पर आपके पुराने पाप कर्म भुला देगा। नाम ले लो ईश्वर का, पूज लो उसको, बांध लो खूब प्रशंसा के पुल। कहीं नाम न लेने से, उसकी तरफ न देखने से, ईश्वर मेरा काम न बिगाड़ दें, धंधा चौपट न कर दें, ढेर सारी समस्याएं या बाधाएं न पैदा कर दें, बड़ा अहंकारी नेता किस्म का है ईश्वर! भीतर से तो चाहते नहीं हो कि ऐसे जिया जाए। परंतु मजबूरी है क्योंकि त्याग किए बिना ईश्वर हमारी सुनने वाला नहीं है। देवता प्रसन्न नहीं होंगे क्योंकि वह हमें कष्ट में देखे बिना खुश नहीं होंगे। इस तरह के नकारात्मक भावों से कभी पुण्य का लाभ नहीं मिलता क्योंकि अचेतन मन आपके आंतरिक भावों के अनुसार ही फल देता है। तीर्थ का अर्थ है दूसरे छोर (तीर) पर जाने की कला, उसकी यात्रा जो 99 फीसद किसी का भी वास्तविक उद्देश्य नहीं है। तीर्थ क्षेत्र यानी ऐसी पवित्र, ऊर्जावान जगह जहां किसी ने बैठकर साधनाएं की, एक सकारात्मक ऊर्जा का निर्माण किया, जहां रज-रज में सकारात्मक ऊर्जाओं का भंडार है, जहां एक दिव्य पुरुष या आत्मा का निवास रहा है,

जारी पेज 2